ISSN No. 2349-4654
नाद – नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक
वर्ष : 1, अंक : 1, नवम्बर 2014

पिछले तीन दशकों में भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ किये गए प्रयोग

अविनाश कुमार
शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार-संक्षेप

वैश्वीकरण तथा वैज्ञानिक विकास का प्रभाव सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर ही नहीं अपितु सांस्कृतिक स्तर पर भी देखने को मिल रहा है। बदलाव के ऐसे परिवेश में भारतीय शास्त्रीय संगीत का अछूता रह पाना नामुमकिन है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को रागदारी संगीत भी कहा जाता है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास तथा वैश्वीकरण के कारण उत्पन्न हुई प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप समयाभाव एवं भाग-दौड़ भरी जीवनशैली का असर रागों के प्रस्तुतीकरण, रागों के स्वरूप, नवीन रागों की रचना आदि पर दिखना स्वाभाविक ही है। सामान्य अवधारणा है कि हमारे शास्त्रीय संगीत पर वैश्वीकरण का प्रतिकूल असर हुआ है किन्तु कुछ बदलाव ऐसे भी हुए हैं जो शास्त्रीय संगीत को नया आयाम प्रदान कर रहे हैं। इन बदलावों का श्रेय गायक-वादक की कल्पनाशक्ति के अतिरिक्त तकनीकी विकास तथा वैश्वीकरण को अवश्य ही जाता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में ऐसे ही कुछ पहलुओं पर विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है।

शोध-पत्र

'राग' भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक निजी विशेषता है। सम्पूर्ण शास्त्रीय संगीत राग की कल्पना पर ही आधारित है एवं इसके अन्तर में ही समस्त सौन्दर्यात्मक शास्त्रीय तत्व सिमटे हुए हैं। जिस प्रकार पाश्चात्य संगीत 'हारमॅनी' पर आधारित है उसी प्रकार हमारा संगीत 'मेलॉडी' पर निर्भर करता है। जहाँ 'हारमॅनी' में स्थाई स्वर निश्चित नहीं होते, एवं बदलते रहते हैं वहीं 'मेलॉडी' में हमारा स्थाई स्वर ('सा') निश्चित होता है एवं 'सा' से हम हमेशा सम्बन्ध स्थापित रखते हैं। मेलॉडी की सभी विशेषताएँ राग-व्यवस्था में निहित होती हैं।

राग निश्चय ही आनंद एवं मनोरंजन का साधन है किन्तु ये राग उत्पन्न कहाँ से हुए, यह प्रश्न हमें आनंद की उस स्थिति से ज्ञान, अध्ययन एवं व्याख्या के स्तर पर ला देती है।

''रञ्जको जनचित्तानां स रागः।''[1]

अर्थात् वह स्वर समूह जो लोगों के चित्त का रंजन कर सके, वह राग है। बिना शब्दों का आश्रय लिए भी राग भावराशि का निर्माण कर सकता है एवं संवेदनशील मन इस भाव पर आरूढ़ होकर राग के रसास्वादन का अनुभव कर सकता है। राग में कलाकार के मनोभावों को श्रोता के मन में सम्प्रेषित करने का योगबल है।

वर्तमान शास्त्रीय संगीत रागदारी संगीत भी कहलाता है क्योंकि राग ही इसका प्राण है। रागों को आधार बनाकर ही शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत किया जाता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग रचना के कुछ नियम निर्धारित किये गए हैं जो निम्नलिखित हैं—[2]

1. किसी भी राग में कम से कम पाँच स्वर अवश्य होंगे।
2. षड्ज ('सा') स्वर किसी भी राग में वर्जित नहीं हो सकता।
3. मध्यम ('म') और पंचम ('प') में से कम से कम किसी एक स्वर का राग में होना आवश्यक है।
4. अगर किसी राग का वादी स्वर पूर्वांग में है तो इसका संवादी स्वर उत्तरांग में होगा।
5. किसी भी राग में शुद्ध निषाद ('नि') या कोमल 'नि' को वादी का स्थान नहीं दिया जाता। तीव्र 'म' को तो संवादी स्वर का स्थान भी प्राप्त नहीं होता।
6. पूर्वांग वादी राग दिन के 12 बजे से रात के 12 बजे तक गाये जाते हैं और उत्तरांग वादी राग रात के 12 बजे से दिन के 12 बजे तक गाये जाते हैं।
7. संधिप्रकाश रागों में प्रायः रिषभ ('रे') और धैवत ('ध') कोमल होते हैं और गांधार ('ग') तथा 'नि' शुद्ध।
8. सायंकालीन रागों में 'ग' और 'नि' की प्रबलता दिखती है।
9. जिन रागों में एक स्वर के दोनों रूपों का प्रयोग होता है, उनमे प्रायः आरोह में स्वर का तीव्र रूप और अवरोह में स्वर का कोमल रूप प्रयोग होता है।

इनके अतिरिक्त भी अन्य कई नियम राग रचना के सन्दर्भ में निश्चित किये जाते हैं। प्रकृति स्वाभाविक रूप ही से परिवर्तनशील है। फलस्वरूप, हमारा शास्त्रीय संगीत भी परिवर्तनों के कई दौर से गुजर कर वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। विभिन्न कालों में संगीत की विभिन्न शैलियों ने जन्म लिया। संगीत की शैलियों में परिवर्तन होते रहे हैं। हमारे राग संगीत में हुए परिवर्तनों को हम सहजता से अनुभव कर सकते हैं। राग संगीत में पिछले तीन दशकों में बहुत तीव्र बदलाव देखा गया है। उपरोक्त कथन के पक्ष में हम निम्नलिखित तथ्यों को प्रस्तुत कर सकते हैं—

(1.) रागों के प्रस्तुतीकरण में परिवर्तन—

भारतीय शास्त्रीय संगीत के राग अपने अन्दर प्रस्तुतीकरण की अपार संभावनाएं समेटे हुए हैं। एक ही राग अलग-अलग कलाकारों द्वारा कई बार गाए जाने पर भी हर बार नया आनंद दे जाता है। यही विशेषता हमारे राग संगीत को अन्य किसी भी संगीत से अलग अस्तित्व प्रदान करती है।

पिछले दो दशकों में विश्व में कई किस्म के सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक एवं वैचारिक बदलाव हुए हैं। आज पूरा संसार वैश्वीकरण के सूत्र से बंध सा गया है। एक स्थान से हजारों मील दूर घट रही घटनाएं भी सबकी पहुँच में हैं। इन सबका सकारात्मक पक्ष है तो कहीं न कहीं इनके कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। आज मनुष्य के पास समय का अभाव है और इस समयाभाव का असर शास्त्रीय संगीत एवं राग प्रस्तुतीकरण पर भी स्पष्ट दिखता है।

आज से 20-30 साल पहले जब एक कलाकार मंच पर बैठता था तो उससे अपेक्षा की जाती थी कि वह एक राग को डेढ़-दो घंटे गायेगा एवं राग की प्रत्येक संभावना को अपनी कल्पनाशक्ति और रियाज़ के द्वारा श्रोताओं के समक्ष प्रकट करेगा। कलाकार भी पूरे सुकून के साथ राग को गाता-बजाता था किन्तु वर्तमान परिस्थिति थोड़ी अलग है। आज मंच पर बैठने से पूर्व ही गायक - वादक को यह बता दिया जाता है कि उनके पास राग प्रस्तुतीकरण के लिए कितना समय है। परिणामत: राग की सारी संभावनाओं पर विचार कर पाना संभव ही नहीं हो पाता। इसके अलावा एक और चीज़ वर्तमान राग संगीत में समय की कमी के कारण बदली सी दिखती है—आलापचारी के स्थान पर राग में तैयारी और तान की प्रबलता। कम से कम समय में आकर्षक प्रस्तुति के लिए गले की तैयारी एवं तानों की तैयारी पर इन दिनों कलाकारों एवं श्रोताओं का ध्यान ज्यादा आकृष्ट होता है।

ऐसा नहीं है कि उपरोक्त सभी नवीन बदलावों से संगीत की केवल हानि ही हुई है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप जो समयाभाव का दौर आज उपस्थित है, उसने संगीत को कई सकारात्मक लाभ भी दिए हैं। आज के दौर में कम समय में ही अच्छे से अच्छे ढंग से राग प्रस्तुत करने के प्रयास में गायन-वादन में कई नवीन तत्वों का समावेश किया जाने लगा है। तानों - सरगमों के कई श्रुति मधुर और अद्‌भुत प्रकार आज हम सुन सकते हैं। तीन दशक पहले के गायकों को हम अगर सुनें तो यह पायेंगे कि उनकी गायकी में सरगम न के बराबर थीं। सरगम ऐसे लोगों को भी प्रभावित करने में सक्षम है जो शास्त्रीय संगीत ज्यादा नहीं समझते। वर्तमान सभी गायकों को हम सरगम लेते हुए सुन सकते हैं जो आम श्रोताओं को भी बहुत आकर्षित करती हैं। इसके अलावा राग प्रस्तुतीकरण के दौरान टुकड़े - तिहाइयों के विभिन्न प्रकारों का प्रयोग भी आज के राग संगीत की विशेषता है। तानों की तिहाइयों को लेकर खूबसूरत अंदाज़ से सम पर आने की सितार - सरोद आदि वाद्ययंत्रों की तकनीक को आजकल गायक भी अपनाने लगे हैं।

आजकल कुछ रागों में विवादी स्वर को अनुवादी स्वर का स्थान मिल गया है। जैसे—केदार में कोमल 'नि' या भैरवी में शुद्ध 'रे ', 'ग', 'ध' एवं तीव्र 'म', बिहाग में तीव्र 'म' आदि। आलापचारी में 25-30 साल पहले जहाँ एक-एक स्वर की बढ़त को ही राग के अनुकूल समझा जाता था, वहीं तीन दशकों के समय ने इस मानसिकता में थोड़ा परिवर्तन ला दिया है। आज स्वर की बढ़त में शास्त्रीयता से ज्यादा कर्णप्रियता को स्थान दिया जाता है। इस कारण किसी स्वर के अगले कुछ स्वरों को कण रूप से लेकर अगर खूबसूरती बढती है तो उसे अनुचित नहीं माना जाता है।

विगत दो-तीन दशकों में कर्नाटक संगीत के कुछ रागों ने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में एक अभिन्न स्थान बना लिया है। उदाहरणार्थ- चारुकेशी, किरवानी, कलावती, जनसम्मोहनी, वाचस्पति, हंसध्वनि आदि। मंच पर राग प्रस्तुतीकरण में उपरोक्त राग बहुत ज्यादा सुनने में आने लगे हैं। इन दिनों बहुत ज्यादा मिश्रित रागों की अपेक्षा सर्वमान्य प्रचलित रागों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। अगर हम कुछ वर्ष पीछे जायें तो हम यह पाते हैं कि कुकुभ बिलावल, सरपरदा बिलावल, खट बिहाग, शिवमत भैरव, जैत कल्याण आदि जैसे अप्रचलित राग उस वक़्त के कलाकार गाते-बजाते थे। वर्तमान दौर के कलाकार यदा-कदा ही ये राग मंच पर या ध्वनि मुद्रण पर गाते बजाते सुनने में आते हैं।

इन सबके अतिरिक्त भी राग प्रस्तुतीकरण में विगत तीन दशकों में कई अन्य बदलाव आये हैं। मंच पर उपस्थिति तथा कलाकार एवं संगतकार के मंच पर बैठने के ढंग में भी बदलाव दिखता है। 30 वर्षों में माइक औए ध्वनि विज्ञान में काफी तरक्की हो गयी है। बैठकों का स्थान बड़ी-बड़ी सभाओं और महोत्सवों ने ले लिया है।

''ध्वनिविस्तारक उपकरणों के आने से आज कलाकार हजारों श्रोताओं के बीच अपना प्रदर्शन कर पाने में सक्षम हैं। माइक्रोफोन के जरिये कलाकार के प्रदर्शन में सुधार हुआ है और वह अपनी कला के प्रति सचेत हुआ है।'[3]

''पहले गायन में आवाज़ की बुलंदी पर अधिक ध्यान दिया जाता था और संभवत: इसका कारण था कि सभा में श्रोता दूर दूर तक सुन सकें। लेकिन आवाज़ की बुलंदी और जोर जोर से से गाने से स्वर माधुर्य नष्ट होने का डर रहता है। एक निश्चित सीमा के बाद आवाज़ के फट जाने का भी डर रहता है। ध्वनिविस्तारक यंत्रों के आ जाने से इन समस्याओं से निजात मिल गयी है,क्यों कि अब लो स्केल में गा कर भी अधिक श्रोताओं तक तक अपनी आवाज़ पहुँचा पाना संभव है।''[4]

शास्त्रीय संगीत में उपरिलिखित सभी प्रयोग विगत के दो-तीन दशकों में किया गया या यह कह सकते हैं कि इस कालक्रम में इन प्रयोगों की गति में तेजी आई और रागदारी संगीत में परिवर्तन स्पष्ट दिखने लगा।

(2.) राग संगीत के तालों में परिवर्तन एवं प्रयोग

हमारे रागदारी संगीत अर्थात शास्त्रीय संगीत में ताल का एक प्रमुख स्थान है। शायद विश्व के किसी भी संगीत में ताल एवं लय की इतनी विविधताएँ नहीं होंगी जितनी भारतीय शास्त्रीय संगीत में देखने को मिलती हैं। पिछले तीन दशकों में गायन के बड़े ख्याल की तालों में

अंतर दिखता है। पहले की भांति अब बड़े ख्याल में झूमरा, तिलवाड़ा आदि का प्रयोग ज्यादा सुनने को नहीं मिलता। मुख्य रूप से इन दिनों विलम्बित एकताल की ही संगत होती है। वाद्य संगीत में कई सितार या सरोद वादक अपने साथ दो तबला वादक या एक तबला और एक पखावज लेकर मंच पर प्रस्तुति देते हुए भी देखे जा रहे हैं।

(3.) जसरंगी

हाल के दिनों में राग संगीत के साथ जो एक बहुत बड़ा और सफल प्रयोग किया गया है, वह है—जसरंगी। इसके निर्माण का श्रेय प. जसराज को दिया जाता है। उनके नाम के आधार पर ही इस गायन शैली को जसरंगी कहा जाता है। इस शैली का आधार मूर्छना पद्धति है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भारतीय संगीत मूर्छना पद्धति पर आधारित है एवं हमारे राग मूर्छना पद्धति से बनते हैं। प. जसराज ने इसी मूर्छना पद्धति को आधार बनाकर ' जसरंगी ' की रचना की। इसमें एक गायक और एक गायिका होते हैं जो अलग स्वरों को आधार मानकर दो अलग-अलग रागों को एक साथ गाते हैं। इनमें उन रागों का जोड़ा गाया जाता है जो मूर्छना पद्धति के आधार पर एक से सुर के होते हैं, जैसे—कलावती-आभोगी, पूरिया धनाश्री—शुद्ध धैवत ललित आदि। आभोगी के मध्यम को षड्ज बनाकर गाने से कलावती बनता है। इन दोनों रागों की प्रकृति में भी बहुत साम्यता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही शायद इन दोनों रागों का प्रयोग जसरंगी में किया गया। ऐसा ही कुछ शुद्ध धैवत ललित एवं पूरिया धनाश्री के साथ भी है।

जसरंगी को सही ढंग से निभा पाना बहुत मुश्किल है। एक साथ दो अलग-अलग रागों को एक साथ गाने के लिए स्वरों की गहरी समझ की जरुरत होती है। विदुषी अश्विनी भिड़े देशपांडे एवं पंडित संजीव अभयंकर का जसरंगी गायन विगत दिनों में काफी प्रसिद्ध हुआ है। वैसे तो अनेक रागों के ऐसे जोड़े हो सकते हैं जिनके सप्तक (स्केल) को बदलने से दूसरे राग बनते हैं, जैसे—दुर्गा के 'ध' को 'सा' बनाने से मालकौंस या यमन के 'नि' को 'सा ' मान के गाने से भैरवी का स्केल प्राप्त होता किन्तु इन रागों की प्रकृति में साम्यता न होने के कारण इनको जसरंगी के रूप में गा पाना तर्कसंगत नहीं लगता।

जसरंगी में प्राचीन मूर्छना पद्धति को आधार बनाकर एक नवीन गायन शैली को प्रतिष्ठित किया गया है जो कि अत्यंत मौलिक एवं श्रुतिमधुर प्रतीत होता है।

(4.) संगीत में इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का प्रयोग

वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के इस दौर में इलेक्ट्रॉनिक उपकरण हमारी रोजमर्रा की जिंदगी का एक अभिन्न हिस्सा बन गए हैं। शास्त्रीय संगीत भी इससे अछूता नहीं है। इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा, इलेक्ट्रॉनिक स्वरमंडल, इलेक्ट्रॉनिक सितार (जिसे जिटार भी कहते हैं) एवं इलेक्ट्रॉनिक सरोद से आज शास्त्रीय संगीत से जुड़ा हर इंसान वाकिफ है। इन सभी उपकरणों ने हमारे राग संगीत को काफी प्रभावित किया है।

शास्त्रीय संगीत की कल्पना तानपुरा के बिना नहीं हो सकती। तानपुरा अपने आकार के कारण लाने ले जाने में काफी कठिनाई का कारण बनता है किन्तु इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा के आ जाने से यह समस्या काफी हद तक हल हो गयी है। निश्चय ही, वास्तविक तानपुरे का स्थान इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा नहीं ले सकता किन्तु विशेष परिस्थिति में यह गायक-वादक को एक आधार देने में अवश्य सक्षम है। इसी प्रकार इलेक्ट्रॉनिक तबला के आने से रियाज़ में आसानी अवश्य आ गई है।

''ऐसे वाद्यों के निर्माण में जिनका सहयोग रहा है, उनमें से एक हैं,बंगलौर के इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियर श्री जी. राजनारायण, जो कि एक प्रसिद्ध बांसुरी वादक भी हैं। इन्होंने कुछ विद्युतीय वाद्यों जैसे तबला, तानपुरा, स्वरपेटी इत्यादि का निर्माण किया।''[5]

''पिछले बीस वर्षों में रुद्रवीणा में दो प्रकार के परिवर्तन करने की चेष्टा हुई है—पहला यह के इसका दंड जो प्राचीन काल में बांस का ही होता था, उसमें अब कहीं कहीं लकड़ी का प्रयोग देखा जा सकता है। दूसरा, उसके पर्दों को पहले मोम का मसाला लगाकर स्थिर कर देते थे किन्तु अब इनकी ऐसी व्यवस्था की जाती है की उन्हें आवश्यकतानुसार आगे पीछे खिसकाया जा सके।''[6]

''तबले में कुछ वर्ष पहले तक डग्गे का ढांचा मिट्टी का होता था, आज कल अब इसे पीतल,तांबा, आदि से बनाने लगे हैं ताकि उसके टूटने फूटने का डर न रहे।''[7]

इलेक्ट्रॉनिक सितार एवं सरोद राग संगीत के साथ किये गए नए प्रयोग हैं। इनकी आवाज और आकार वास्तविक वाद्य यंत्र की तरह नहीं है। इलेक्ट्रॉनिक होने के कारण इसमें स्वरों की आस को सामान्य की अपेक्षा काफी लम्बा रखा जा सकता है। मींड, गमक, आस आदि इलेक्ट्रॉनिक सितार-सरोद में वास्तविक की अपेक्षा आसानी से निकलती है। अत: मींड —गमक प्रधान रागों के वादन में स्वाभाविक रूप से आसानी होती है किन्तु इलेक्ट्रॉनिक सितार-सरोद में रागों की स्वाभाविकता एवं सौंदर्य नष्ट हुए से प्रतीत होते हैं। अभी तक इलेक्ट्रॉनिक सितार-सरोद को पूर्णरूप से शास्त्रीय रागों को बजाने में प्रयोग में नहीं लाया गया है। फिल्मी संगीत एवं फ्यूज़न में ही इनका प्रयोग मुख्यत: सुनने को मिलता है।

विद्युतीय वाद्ययंत्रों के अलावा ध्वनि व्यवस्था के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है। आज साउंड सिस्टम के आ जाने से राग में स्वरों की लगावट व तरीके तो बदले ही हैं, साथ ही साथ गायकों को गाने में काफी सहूलियत भी हो गयी है। पहले के गायकों की भाँति उन्हें ज्यादा से ज्यादा श्रोताओं तक आवाज़ पहुँचाने के लिए ऊँचे स्केल में गाना नहीं पड़ता। फलस्वरूप इन तीन दशकों में राग संगीत में आवाज़ की मधुरता पर विशेष बल दिया जाने लगा है।

(5) कंप्यूटर का संगीत कला पर प्रभाव

कंप्यूटर की सहायता से ध्वनि को उत्पन्न कर पाना संभव है।

''श्री बर्नार्ड बेल ने 1980 में संगीत की तारता को नापने का कंप्यूटर

द्वारा चलित एक यंत्र का निर्माण किया है, जिसे उन्होंने Melodic movement analyser (M.M.I) का नाम दिया है। इस यंत्र की सहायता से ध्वनि की तारता व समय के ग्राफ खींचे जा सकते हैं, जिन्हें संगीत के 'मेलोग्राफ' कहते हैं। 1984 में डी बी विश्वास ने इस यंत्र की सहायता से राग दरबारी के कोमल गा का अध्ययन किया था,जिसमे उस्ताद असद अली खान एवं उनके पिता उस्ताद सादिक अली खान ने रुद्रवीणा पर दरबारी बजाया था!''[8]

''इसी यंत्र की सहायता से द्विजेंद्र विश्वास ने राग जौनपुरी में भूपेन्द्र शीतल, जो की आगरा घराने के दिलीप चन्द्र बेदी की शिष्या रहीं हैं, की गायकी का अध्ययन किया है।''[9]

''इसी प्रकार एस्केन फेल्ट ने बनाया, जो कंप्यूटर और एस डी कनवर्टर की सहायता से वायलिन की ध्वनि और उसके कमान से सम्बंधित कई चीजों के अध्ययन में सहायक सिद्ध हुआ।''[10]

(6.) फ्यूज़न संगीत

फ्यूजन, फ्यूज शब्द से बना है। फ्यूजन का अर्थ है—दो वस्तुओं को जोड़कर एक वस्तु बनाना। इस प्रकार फ्यूज़न का अर्थ हुआ— To Fuse, अर्थात जोड़ने की क्रिया।''[11]

अगर विज्ञान की बात करें तो nuclear fusion आज के समय में ऊर्जा उत्पादन का सबसे सशक्त साधन है।

फ्यूजन संगीत आज के दौर की विशेषता है जो कि बीते दो दशकों में काफी लोकप्रिय हो गया है। यद्यपि भारतीय संगीत के साथ फ्यूज़न की शुरुआत शायद तभी हो गयी जब पंडित रविशंकर विदेशों में जाकर भारतीय संगीत की धूम मचा रहे थे। उस दौरान कई यूरोपीय एवं अमेरिकी कलाकारों के साथ उनकी जुगलबंदियें के कार्यक्रम हुए, जो काफी लोकप्रिय हुए लेकिन गायकी के साथ फ्यूज़न और आम लोगों तक फ्यूज़न इन 10-20 सालों में ही पहुँचा है।

'फ्यूज़न' शब्द आज हर किसी की जुबान पर है। भारतीय रागों के गायन-वादन के साथ अभारतीय वाद्ययंत्रों की संगत को ही फ्यूज़न संगीत कहते हैं। इसमें भारतीय राग संगीत के किसी भी मूलभूत नियम का शायद ही प्रयोग होता है। बस भारतीय रागों की स्वरावलियों या कभी-कभी पारंपरिक बंदिशों को विदेशी ताल वाद्यों, तत वाद्यों एवं सुषिर वाद्यों को इस संगीत में गाते-बजाते हैं। कभी-कभी, आलाप या तानों-सरगमों का प्रयोग भी कर दिया जाता है।'फ्यूज़न' शब्द का अर्थ ही है—जोड़ना। भारतीय राग संगीत को विदेशी संगीत से जोड़कर प्रस्तुत करते हैं तो वह फ्यूज़न कहलाता है। इसकी लोकप्रियता का असर इतना है कि बड़े-बड़े शास्त्रीय गायक-वादक भी फ्यूज़न संगीत गाते बजाते देखे जा सकते हैं। फ्यूज़न संगीत का एक और प्रकार आज कल बहुत प्रचलित हुआ है, जिसमें हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत और कर्नाटक संगीत की जुगलबंदी की जाती है। विदेशी और शास्त्रीय संगीत के पहले वर्णित फ्यूज़न प्रकार की अपेक्षा फ्यूज़न का यह प्रकार अधिक शास्त्रीय, व्याकरण सम्मत एवं श्रुतिमधुर है। अगर यह कहा जाए कि वर्तमान समय में 'फ्यूज़न संगीत' एवं 'फ्यूज़न बैंड्स' की लोकप्रियता चरम पर है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

'फ्यूज़न' संगीत ने भारतीय राग संगीत के स्वरूप को काफी बिगाड़ा है। रागों की वास्तविक प्रकृति, भाव, रस आदि का फ्यूज़न संगीत में कोई स्थान नहीं है। भारतीय रागों की विशालता एवं गरिमा को इस संगीत से काफी धक्का लगा है लेकिन इसका एक सकारात्मक पक्ष भी है। फ्यूज़न के माध्यम से भारतीय राग आम लोगों तक पहुँच गए हैं।

(7) नए रागों की रचना

वर्तमान युग पुनरूत्थान या पुनर्निर्माण का युग है। पिछले कुछ वर्षों में शास्त्रीय संगीत में कई नए राग बने। नए राग अनेक प्रकार से बन सकते हैं, जैसे—वादी स्वर को बदल देने से या स्वरों को घटा-बढ़ा देने से, पूर्वांग-उत्तरांग के दृष्टिकोण से, ठाठ परिवर्तन इत्यादि से। कभी - कभी नए रागों की उत्पत्ति के लिए आधार स्वर को बदल देते हैं।

संगीत के क्षेत्र में पहले से ही अनेक राग हैं, अतएव नए मौलिक एवं बिल्कुल अलग सा राग बना देने की संभावनाएं वैसे ही बहुत कम हैं। पुराने रागों को या अप्रचलित रागों को ही नए ढंग से प्रस्तुत करने से ही उनमें नवीनता आ जाती है। इसके साथ ही प्रचलित रागों की चलन एवं स्वर में थोड़ा परिवर्तन करके भी नए राग बनते हैं- जैसे भूपाली के स्वरों में परिवर्तन से भूपेश्वरी एवं प्रतीक्षा, अहीरी तोड़ी से परमेश्वरी, मालकौंस से चंद्रध्वनि आदि। ये सभी राग बीते कुछ दशकों में ही बनाए गए हैं एवं आज ये बहुत लोकप्रिय हैं।

परिवर्तन एवं नवीनता प्रकृति के अनिवार्य नियम हैं अत: रागों में परिवर्तन एवं नए रागों की रचना पूर्णत: प्राकृतिक हैं किन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है की हम शास्त्रीय संगीत के सिद्धांतों से जुड़े रह कर ही यह कार्य करें ताकि संगीत की शास्त्रीयता एवं नवीनता समानान्तर रूप से साथ चल सकें। अत: राग रचना का मार्गदर्शन हमें अपने शास्त्रों से लेना पड़ेगा अन्यथा मार्गहीन होने का खतरा उत्पन्न हो जायेगा।

कुछ अन्य तथ्य जो पिछले दो-तीन दशकों में शास्त्रीय संगीत के साथ प्रयोग में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रहीं है, उनका भी वर्णन आवश्यक है। एक बात तो स्पष्ट है कि राग संगीत के साथ विगत के कुछ दशकों में जो प्रयोग और परिवर्तन देखने को मिल रहा है उनके दो प्रमुख कारण हैं—शास्त्रीय संगीत की परिवर्तनशीलता की प्रकृति एवं वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के कारण लोगों की बदलती रुचि। वैश्वीकरण ने जहाँ लोगों की रूचि को प्रभावित किया है, वहीं दुनिया के लोगों को एक दूसरे के समीप भी ला दिया है। आज इंटरनेट, कंप्यूटर एवं सी. डी. आदि के माध्यम से हर जगह का संगीत हम सुन पाने में सक्षम हैं। विज्ञान की इन तकनीकी प्रगतियों ने भारतीय रागों को दुनिया के हर कोने के रसिकों तक पहुँचाया है एवं हम भी दुनिया के हर हिस्से का संगीत सुन सकते हैं। परस्पर सांगीतिक आदान-प्रदान का प्रभाव एक

दूसरे पर पड़ना भी स्वाभाविक है। इसको छोटे स्तर पर इस तरह समझ सकते हैं। आज के 50–100 साल पहले जब विज्ञान ने इतनी प्रगति नहीं की थी, तब किसी के लिए यह अत्यंत मुश्किल था कि वह किसी अच्छे कलाकार का गाना आसानी से सुन सके। घरानों के गुरु अपने शिष्यों को कड़े शब्दों में यह निर्देश देते थे कि वे अन्य घराने के कलाकारों को सुनने न जायें। अन्य कोई साधन भी नहीं था कि कोई घर बैठे उनको सुन सके। परिणाम यह होता था कि शिष्य बिल्कुल अपने गुरु की प्रतिकृति बन कर उभरता था। आज की परिस्थिति बिल्कुल उल्टी है। शिष्य अपने गुरु से जो राग सीखता है, उसी राग को वह अन्य कलाकारों की रिकॉर्डिंग में भी सुनता समझता है। अपने गुरु एवं अन्य कलाकारों से एक ही राग को सुनने से उसके अन्दर उस राग की एक अलग ही छवि बनती है, जो उसकी निजी विशेषता बन जाती है। आज के कलाकारों को जब हम सुनते हैं तो हमें उनकी गायकी में कई बड़े कलाकारों का असर दिखता है, जो कि वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण का प्रभाव है। अप्रत्यक्ष रूप से यह हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के साथ किया गया ऐसा प्रयोग है जिसका पता किसी कलाकार के पूरी तरह निखर जाने के बाद चलता है।

इस दिनों संगीत एवं स्वास्थ्य को भी जोड़ कर देखा जा रहा है। यद्यपि संगीत व स्वास्थ्य को पुराने समय से जोड़ कर देखा जाता रहा है किन्तु इस क्षेत्र को इन दिनों काफी गंभीरता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जा रहा है। स्वास्थ्य विज्ञान की इस शाखा को Music Therapy या संगीत चिकित्सा कहते हैं। खासकर मनोचिकित्सा के क्षेत्र में राग संगीत का प्रयोग काफी सफल साबित हुआ है। यद्यपि इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण या कोई लिखित आधार नहीं है कि कौन सा राग कौन सी बीमारी के इलाज़ में कारगर है किन्तु क्रियात्मक रूप में यह देखा गया है कि अवसाद, मूर्छा, उद्विग्नता जैसी मानसिक विषमताओं को नियंत्रित करने में हमारे राग सक्षम हैं। स्वास्थ्य विज्ञान की Holistic Treatment शाखा के अंतर्गत संगीत का प्रयोग होने लगा है।

संस्थागत संगीत शिक्षण पद्धति का जन्म पं. विष्णु दिगम्बर एवं भातखंडे जी के समय से ही हो गया था किन्तु विगत कुछ दशकों में इसमें बहुत तेजी से प्रगति हुई है। हमारे देश के कुछ विश्वस्तरीय विश्वविद्यालयों में संगीत एक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। जैसे अन्य विषयों के पाठ्यक्रम निर्धारित होते हैं, वैसे ही संगीत के भी निर्धारित किये गए हैं। एक निश्चित समय में कई रागों को सीखना विश्विद्यालय संगीत शिक्षण में आवश्यक है। इसके लिए राग संगीत के स्वरूप के साथ भी प्रयोग किया जाने लगा है। उदाहरणार्थ—विश्वविद्यालय में एक राग की तालीम के बाद का स्वरूप इस प्रकार बनता है—आलाप, बड़ा ख्याल, विस्तार, कुछ निश्चित तानें व सरगम,छोटा ख्याल,बँधी हुई तान व सरगम एवं तराना। काफी हद तक यह शास्त्रीय संगीत के पारंपरिक ढंग की तरह ही लगता है किन्तु सामने बैठ कर सुनने पर इसमें अंतर स्पष्ट दिखता है। समयाभाव के कारण रागों की गहन तालीम दे पाना संभव न हो पाने के कारण राग गायन–वादन बहुत सतही हो जाता है लेकिन विश्वविद्यालयों में संगीत के आने से संगीत का प्रचार प्रसार काफी बढ़ा है। जिस राग संगीत से आम लोग कोसों दूर थे, अब वो कम से कम शास्त्रीय संगीत को सुनने, समझने और सीखने का प्रयास अवश्य कर रहे हैं। राग संगीत के क्षेत्र में यह परिवर्तन अत्यंत सकारात्मक है। अन्य विषयों की तरह संगीत भी छात्रों के लिए कैरियर का एक विकल्प बन गया है।

राग संगीत के क्षेत्र में कुछ संस्थाओं जैसे स्पिक मैके, संगीत संकल्प आदि ने इन दो दशकों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। स्पिक मैके ने राग संगीत को युवा वर्ग के उन श्रोताओं तक पहुँचाया है जो शास्त्रीय संगीत से बिल्कुल जुड़े नहीं थे। जब एक प्रबुद्ध कलाकार इन युवाओं के समक्ष शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत करता है, तो उन्हें राग संगीत में कुछ प्रयोग एवं बदलाव करने पड़ते हैं,ताकि युवा वर्ग के श्रोता रागों की जटिलताओं में फँसे बिना इसका आनन्द उठा सकें। अपने गूढ़ पारंपरिक रूप में राग संगीत युवाओं को पहली बार में अच्छे लगें, यह संदेहास्पद है, इसलिए इनमें कुछ बदलाव वांछनीय भी हैं। ये प्रयोग अब हमारे शास्त्रीय संगीत का अभिन्न हिस्सा बनते जा रहे हैं।

उपसंहार

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि हमारे शास्त्रीय संगीत के साथ पिछले तीन दशकों के समय में कई प्रयोग किये गए हैं। इनमें से कई प्रयोग सफल हुए हैं और कई असफल। शास्त्रीय संगीत पर इनका सकारात्मक–नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता रहा है। राग संगीत के साथ ये जो प्रयोग किये जा रहे हैं, इनके मूल में वैश्वीकरण विद्यमान है। वैश्वीकरण ने संसार की हर चीज़ के साथ - साथ हमारे राग संगीत को भी प्रभावित किया है। यह आवश्यक है कि हम राग संगीत के साथ किए जा रहे प्रयोगों में सतर्कता बरतें एवं उसकी शास्त्रीयता को यथासंभव बरकरार रखें।

पाद टिप्पणी

1. बृहद्देशी, तृतीय अध्याय,पृ. 64, श्लोक 264
2. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग 5, पंडित विष्णुनारायण भातखंडे, पृ. 30–31
3. भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, अनीता गौतम, पृ. 179
4. हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता, असित कुमार बनर्जी, पृ. 100
5. भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, अनीता गौतम, पृ. 66
6. वही, पृ. 63
7. वही, पृ. 63
8. http://www.dailymotion.com/video/xg5f8x_intonation-of-

north-indian-classical-music-working-with-mma_tech

9. http://www.dailymotion.com/video/xg5f8x_intonation-of-north-indian-classical-music-working-with-mma_tech
10. Measurement of Bow Motion and Bow Force in Violin Playing, Journal of Accoustic Society of America, vol 80, page- 1007-1015-1986, Asken Felta
11. संगीत कला विहार,अगस्त 2005, पृ. 35

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

संगीत शास्त्र तथा माला, स्व. पंडित भोला दत्त जोशी, सरोज प्रकाशन, दिल्ली

हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता, डॉ. असित कुमार बनर्जी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास, डॉ. सुनंदा पाठक

मतंग से पूर्व राग की अवधारणा एवं विकास, नमिता यादव, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद

भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरण का प्रयोग, अनीता गौतम, कनिष्का पब्लिशर्स

http://www.dailymotion.com/video/xg5f8x_intonation-of-north-indian-classical-music-working-with-mma_tech

http://www.dailymotion.com/video/xg5f8x_intonation-of-north-indian-classical-music-working-with-mma_tech

Measurement of Bow Motion and Bow Force in Violin Playing, Journal of Accoustic Society of America, vol 80, Asken Felta

क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग 5, पंडित विष्णुनारायण भातखंडे, संपादक

डॉ.लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक- संगीत कार्यालय, हाथरस, 13वां संस्करण

बृहद्देशी, अनुवादक- डॉ डी बी क्षीरसागर, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर